UGC: 1340-48783, ISSN: 2349-4654
नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक
वर्ष : 5, अंक : 1, जुलाई 2017

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर खाँ की शास्त्रीय संगीत को देन

गुरदयाल सिंह
संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

सार-संक्षेप

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक प्रत्येक युग में संगीत संस्कृति को नवीन प्रासंगिकता, संगीत परम्परा में निरन्तर विकास, संगीत की प्रतिष्ठता एवं प्रवाहित परम्परा में अद्‌भुत पुनराविष्कार में किसी विशेष व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का योगदान रहा है। जिस के अंतर्गत् भारत वर्ष में ऐसी महान विभूतियों का अवतरण हुआ है जिन्हों ने तपस्या, सृजनात्मक क्षमता एवं परम्परागत कला की कठोर साधना के बल पर नवचेतना व नवीन युग का निर्माण किया। ऐसी ही एक महान विभूति उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ की है, जिन्हों ने अपनी कठोर साधना एवं संघर्ष से सितार वादन को एक नयी दिशा प्रदान करते हुए सितार वादन को विकास की चरम सीमा पर पहुँचाया। उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ ने सितार वादन की शिक्षा इन्दौर-बीनकार घराने के अंतर्गत् अपने पिता उस्ताद ज़ाफर ख़ाँ, उस्ताद महबूब ख़ाँ एवं उस्ताद बाबू ख़ाँ से प्राप्त की। ख़ाँ साहिब के वादन में अपनी परम्परा की विशेषताएँ तो हैं ही परन्तु साथ में बहुत -सी अपनी निजी विशेषताएँ भी हैं जिसके कारण आपने अपनी विलक्षण तथा विशिष्ट शैली 'ज़ाफरख़ानी बाज' का निर्माण किया। संगीत के क्षेत्र में इनकी अपार श्रद्धा, योग्यताओं, कृत्तियों व योगदान को देखते हुए इन्हें संगीत जगत् की अमूल्य निधि कहा जा सकता है।

मुख्य शब्द : इन्दौर, अब्दुल हलीम, ज़ाफर खाँ, बीनकार, जगवाड़ा, एशियाटिक पिक्चर्स

शोध-पत्र

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ का जन्म 19 फरवरी 1927 को मध्य प्रदेश के जावरा नामक प्रांत में हुआ, परन्तु कुछ विद्वान इनका जन्म 18 फरवरी सन् 1929 में भी मानते हैं। ख़ाँ साहिब के पिता उस्ताद ज़ाफर ख़ाँ इन्दौर-बीनकार घराने से समबद्ध थे, जो कि प्रसिद्ध बीनकार एवं सितार वादक होने के अतिरिक्त अच्छे गायक भी थे। आपके प्रपितामह उस्ताद ग़ैरत ख़ाँ और पितामह उस्ताद मुरव्वत ख़ाँ भी इन्दौर-बीनकार घराने के श्रेष्ठ बीनकारों में से थे। इस तरह आप अपने परिवार में इस घराने का प्रतिनिधित्व करने वाले चौथी पीढ़ी के कलाकार थे। आपके पिता धर्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे। उनकी दैनिक चर्या में नमाज़, रोज़ा आदि शामिल थे। दिन के समय में वह अपने छात्रों को इस्लामी ग्रन्थों में से शिक्षा देने में व्यस्त रहते थे और आधी रात के बाद संगीत का अभ्यास करते थे।[1] आपके पिता जी, जो कि बन्दे अली ख़ाँ साहिब के घराने से थे, एक और जहाँ संगीतज्ञ थे वहीं दूसरी और अध्यात्मवाद के अनुयायी भी थे। ये दोनों गुण समान रूप से इनमें भी प्रवेश पा गए।[2] आप अभी एक साल के ही थे, तभी आप के पिता जी परिवार सहित बम्बई चले आए। यहीं पढ़ाई के साथ-साथ आप की सांगीतिक शिक्षा की शुरूआत हुई।

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ की सांगीतिक शिक्षा की शुरूआत इन्दौर-बीनकार घराने के अन्तर्गत हुई। आरम्भिक शिक्षा आपने अपने दादा उस्ताद मुरव्वत ख़ाँ और पिता उस्ताद ज़ाफर ख़ाँ से प्राप्त की। 5 वर्ष की आयु में आपके पिता ने कंठ संगीत में आपकी अरूचि को देखते हुए आपको खिलौने जैसा एक छोटा सा सितार देकर आप में संगीत के संस्कार जगाए। जब भी आपके पिता सितार बजाते तो आप उनके समीप आकर बैठ जाते। आपको पिता द्वारा पाँच वक्त की नमाज़ के अतिरिक्त पूरा दिन सितार बजाने का आदेश था।

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ के शब्दों में, ''पाँच साल की उम्र में वालिद उस्ताद ज़ाफर ख़ाँ साहिब से सीखना शुरू किया। खेलने की उम्र थी संगीत में मन कैसे लगता! जब वालिद डाँटें, तो सितार लेकर बैठ जाता। आरोह-अवरोह, मिज़राब पहनना, सितार पकड़ना आदि सीखा। गाना भी शुरू कर दिया था, मौका मिलने पर गाता।''[3] घर में सांगीतिक वातावरण के कारण बचपन से ही आप में संगीत की प्रतिभा थी। परमात्मा की ओर से आपको मधुर कंठ का वरदान था। जिस कारण बाल्यावस्था में ही वह अपनी गज़लों से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। अपने कंठ माधुर्य के कारण ही आपको बाल्यकाल में ही आकाशवाणी पर गजलें पेश करने का सुअवसर मिला। खाँ साहिब एक साक्षात्कार दौरान कहते हैं, ''12-13 वर्ष की उम्र में पहली बार बम्बई रेडियो से गाने का छोटा-सा प्रोग्राम दिया।''[4] आपके पिता ने आपको गायत्री मंत्र भी सिखाया था। इस तरह आप अपने पिता से कंठ संगीत एवम सितार की शिक्षा प्राप्त करते रहे। आप बचपन में अपने पिता के साथ संगीत की विविध शैलियों -कव्वाली, गज़ल और शास्त्री संगीत के कार्यक्रम सुनने जाते थे। बचपन के सुनहरे दिनों की यादों में जिन संगीत ज्ञों के संगीत ने उनके दिल को छुआ उनमें रौशन आरा बेग़म, केसरबाई

केरकर, उस्ताद बरकत अली ख़ाँ (उस्ताद बड़े गुलाम अली ख़ा के छोटे भाई) के नाम प्रमुख हैं। बचपन में उस्ताद बरकत अली ख़ाँ द्वारा गायी पहाड़ी धुन को सुनना आज भी उन्हें याद है।

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ अभी मात्रा 14-15 वर्ष की आयु के ही थे कि आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। ख़ाँ साहिब बताते हैं, ''तकनीक, राग, ठाठ समझ में आ गए थे, सरस्वती का आशीर्वाद ऐसा था कि सब जल्दी समझ जाता था। वालिद, इन्तकाल से पहले एक साल तक बीमार रहे। मैं उनके पास बैठा रहता। वह लेटे हुए गाकर, बताते, मैं सीखता। हर राग की गत् स्थाई-अन्तरा उन्होंने बीमारी के ही दौरान सिखा दी थी। असल रियाज़ उसी समय शुरू हो गया था। अनुमंद्र (चौथा तार) पर आलाप मैं उसी उम्र से करने लगा था, बाद में उसे ओर बढ़ाया।''[5] पिता के स्वर्गवास के बाद आप उस्ताद बन्दे अली ख़ाँ के वंशज उस्ताद महबूब ख़ाँ के शार्गिद बन गए। इनसे आपने सितार की उच्च स्तरीय शिक्षा प्राप्त की। खाँ साहिब उस्ताद महबूब खाँ के बारे में बताते हुए कहते हैं, ''महबूब ख़ाँ गायक तो थे ही सितार भी बजाते थे। पहले इन्दौर में रहे, फिर देवास और अन्त में बम्बई।''[6] इसके अतिरिक्त आपको अत्यधिक अल्प समय के लिए इन्दौर के प्रसिद्ध बीनकार उस्ताद बाबू ख़ाँ का सानिध्य भी प्राप्त हुआ। उपरोक्त सभी उस्तादों से तो आपने संगीत की विधिवत् शिक्षा ग्रहण की ही परन्तु साथ में उस्ताद रज़ब अली ख़ाँ, उस्ताद अमानत ख़ाँ और उस्ताद झण्डे ख़ाँ जैसे उस्तादों से भी मार्गदर्शन प्राप्त किया।

ख़ाँ साहिब बताते हैं, ''मुम्बई के माहिम निवास के समय प्रोफेसर बी. आर. देवधर और उस्ताद झण्डे ख़ाँ आया करते थे। संगीत पर पिता जी के साथ चर्चा होती। उनसे ख़ाँ साहिब ने बहुत कुछ सीखा तथा बीनकार उस्ताद मुराद ख़ाँ के शिष्य उस्ताद बाबू ख़ाँ के सितार वादन से प्रभावित हुए और उनसे राग यमन की गत सीखी। फिल्मों में वादन के दौरान ख़ाँ साहिब ने कलकत्ता के विद्वान ज्ञान प्रकाश घोष से सन् 1945-46 के दौरान काफी कुछ ग्रहण किया तथा श्री डी. एन. कोरेगाँवकर से भी सीखा।''[7] ख़ाँ साहिब के सितार वादन में बीन अंग का जो आभास होता है उसकी शिक्षा उन्होंने प्रसिद्ध बीनकार उस्ताद मुनव्वर ख़ाँ से प्राप्त की है।

इस तरह उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ ने अपने गुरूजनों एवम विभिन्न गुणीजनों से प्राप्त शिक्षा को अपनी कठोर साधना एवम सृजनात्मक क्षमता का इन्द्रधनुषी स्पर्श देकर स्वंय को संगीत जगत् में एक सिद्ध एवम कुशल सितार वादक के रूप में स्थापित किया।

कलाकार की सफलता के क्षेत्र में उचित शिक्षा, सही अभ्यास और गुरू की कृपा होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यूँ तो सभी कलाओं में साधना व अथक संघर्ष की आवश्यकता होती है लेकिन संगीत एक ऐसी कला है जिसमें बहुत अधिक साधना व संघर्ष अनिवार्य है क्योंकि इसका साक्षात्कार सीधे श्रोताओं से मंच पर ही होता है।

ख़ाँ साहिब का कहना है, ''मेहनत, लगन, सरस्वती का आशीर्वाद, गुरू का प्यार, गुरू की तालीम, अपनी समझ और ईशवरीय देन ये सब बातें मिलती हैं तब कहीं एक कलाकार पैदा होता है।'' उनकी मान्यता है, ''संगीत अथाह समुद्र है जिसके पास जितना बड़ा पात्र है, उतना वह ले जाता है। रास्ता कभी नहीं थकता, चलने वाला थक जाता है। कठोर साधना के बाद ही कोई कलाकार बन पाता है। There is always room at the top, higher we go lower we are हम जितना ऊँचा जाते हैं, अपने को उतनी ही निचाई पर महसूस करते हैं।''[8]

बाल्याकाल से ही ख़ाँ साहिब की संगीत साधना एवंम संघर्ष शुरू हो गया था। यद्यपि इन्हें पैतृक परम्परा से ही संगीत सिद्धि प्राप्त थी, किन्तु फिर भी इन्हें सतत अभ्यास एवम संघर्ष से गुज़रना पड़ा। मात्र 14-15 वर्ष की आयु में वालिद के गुज़र जाने से परिवार की सारी जिम्मेदारियां इनके सिर पर आ गई। पिता के निधन एवं आर्थिक कठिनाईयों के कारण ये मैट्रिक से आगे शिक्षा न ग्रहण कर सके। फौरन गुज़ारे के लिए इन्हें फिल्मों का सहारा लेना पड़ा। गाने और सितार के साथ जलतंरग भी बजा लेते थे जिस कारण इन्हें 'एशियाटिक पिक्चर्स' के वाद्यवृन्द विभाग में सितार तथा जलतंरग वादन के पद पर नियुक्त कर लिया गया। ख़ाँ साहिब के शब्दों में, ''पहली फिल्म 'याद' थी, जिसमें सितार और जलतरंग दोनों बजाये। ज़िन्दगी में तो उतार-चढ़ाव आते ही हैं। एशियाटिक पिक्चर्स में दो घण्टे की नौकरी करता था। बाकी सारा समय रियाज में गुज़रता। सिर पर ज़िम्मेदारी थी, मन में बेहद लगन। थोड़े ही समय में मैंने बैकग्राऊण्ड म्यूजिक ओर सोलो अंश के लिए अपने को अलग कर लिया।''[9]

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ अपने रियाज के बारे में बताते हुए कहते हैं, ''13 से 30 वर्ष की उम्र तक जो रियाज़ किया उसमें कभी फर्क नहीं आया। 12-12 घण्टे रात-रात भर रियाज़ किया। सुबह 10-12 बजे तक ड्यूटी की फिर सो गए।''[10] ख़ाँ साहिब के रियाज़ में तर्जनी से इकहरी मिज़राब का रियाज़, मन्द्र पंचम से तार पंचम तक मिज़राब का काम, आरोह में तर्जनी और अवरोह में मध्यमा का प्रयोग, फिर मींड का रियाज़, दोहरी फिरत यथा 'दा दिर दा दिर' फिर 'दिर दिर दिर दारा दिर दिर दारा', पर्दों पर सीधी फिरत, फिर मींड घसीट इत्यादि शामिल थे। इसके अतिरिक्त ख़ाँ साहिब 'चिल्ला' भी किया करते थे। जिसमें कि चालीस दिनों का कठिन रियाज़ होता है। इसके लिए कुछ नियम भी हैं, जैसे बाएँ हाथ की तर्जनी के कट जाने के कारण स्थान भी बदलना होता है। जिस के बारे में ख़ाँ साहिब कहते हैं, ''जब 8-12 घण्टे रियाज़ करते थे तो अंगुली कट जाती थी, तो 'बिलावा' नामक एक पाऊडर आता था जिसे ज़ख्म पर डाल देते थे जिस से वह भर जाता था, फिर उसे सेकते थे, पाँच मिनट सेकने के बाद फिर रियाज़ करते थे क्योंकि लगातार तो इतने घण्टे रियाज़ करना नामुमकिन है। वो है ना- मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर कुछ मरतबा चाहे कि दाना ख़ाक में मिलता है, फिर गुले गुलज़ार होता है।''[11]

इस प्रकार उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ को अपने माहिम निवास काल के दौरान जिन्हों ने अर्ध रात्रि से तड़के तक सितार के स्वरों का आनंद लेते हुए देखा सुना है, वे उस्ताद के इस विश्वास को प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं कि पूर्ण विश्वास और आस्था से साधना करने से

सिद्धि की ओर बढ़ा जा सकता है।

उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर ख़ाँ ने 'ज़ाफरख़ानी बाज' का निर्माण बहुत ही सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिकमयी ढंग से किया है। ख़ाँ साहब के बाज में जहाँ तंत्रकारी पक्ष प्रचुर मात्रा में है वही दूसरी और कंठ संगीत के भी सभी गुण विद्यमान है। ख़ाँ साहब से जब यह पूछा गया कि आप को इस बाज की आवश्यकता क्यों महसूस हुई तो उन्होंने ने कहा, ''रज़ाख़ानी और मसीतख़ानी बाजों में सीधे हाथ पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है, मिज़राब को काफी तैयार किया गया है- इतना कि स्वर एक और मिज़राब पन्द्रह निकालते हैं। मिसाल के लिए सन् 1948 में तैयार किया गया बरकतुल्ला ख़ाँ और इमदाद ख़ाँ का रिकार्ड अब भी मौजूद है। उसे सुन कर देखा जा सकता है कि सीधे हाथ पर कितना ज़ोर है। तानों में दो स्वरों की मींड से ज्यादा की तान नहीं।

मैंने मसीतख़ानी को ही आधार मान कर मिज़राबों को घटा-बढ़ा कर उल्टे हाथ के काम को ज़्यादा तरक्की दी है। वो इस तरह कि एक मात्रा में कभी तीन, कभी तीन से ज़्यादा भाग किए, उसमें मैंने मुख़्तलिफ किस्म की उलटी-सीधी मींड उस के बीच में खटके और नाज़ुक गमक एवं मुरकियों का प्रयोग किया। परदे की तानें, मींड की तानें और गमक की तानों में दोनों हाथों को बराबर (सिन्क्रोनाइज) किया और मिज़राब के वज़न पर ध्यान दिया। इसमें नई जिद्दत दी-उछत लड़ी की। गतभरण, गत अंग चाला-दिरदा, दिर, दारा, दारदा, दारदा... शामिल किया। बारह मात्रा से मुँह शुरू होने वाले बोलों में तिहाईयों का समावेश किया। कभी साढ़े बारह, कभी तेरह कभी साढ़े तेरह कभी चौदह से भी शुरू किया।

जोड़ अंग में चारों तारों का बार-बार इस्तेमाल करता हूँ। अक्सर मध्य स्थान और अनुमन्द्र में चारों तारों से काम लेता हूँ। मैंने खास कर मन्द्र और अनुमन्द्र में चारों तारों से काम लिया है। झाले में बीन अंग के हिसाब से बाएँ और दाएँ हाथ की अनामिका के काम को आगे बढ़ाया है।''[12] इसी के साथ ख़ाँ साहब ज़ाफरख़ानी बाज के अविष्कार का एक अन्य कारण बताते हुए कहते हैं, ''मैंने ज़ाफरख़ानी बाज का अविष्कार इसलिए किया, क्योंकि मेरे विचार में मसीतखानी बाज राग के सूक्षम तत्वों के प्रदर्शन में समर्थ नहीं है। उदाहरण के लिए राग नायकी कान्हड़ा का मुख्य स्वर समुदाय है 'नी पा गा मा पा मा रे सा रे सा' परन्तु यह स्वर समुदाय मसीतख़ानी बाज के निश्चित बोलों दिर दा दिर दा रा दा दा रा में उचित नही बैठ सकता। मैंने ताल के भिन्न टुकड़े सृजन कर, उसका भराव मिज़राब के बोलों से किया है। मसीतख़ानी गत में सामान्यत: ताल के प्रत्येक मात्रा पर एक स्वर है जिसका वादन मिज़राब के एक आघात से होता है। ज़ाफरख़ानी बाज में एक मात्रा पर 6, 8, 12 या 16 बोल भी हो सकते हैं। इस बाज में मैंने दाएँ हाथ की उत्यन्त जटिल तकनीक प्रस्तुत की हैं...।''[13]

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ का रागों के सम्बन्ध में भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। एक ओर जहाँ उन्होंने भारतीय संगीत के कई अप्रचलित तथा लुप्तप्राय प्राचीन रागों, जैसे चंपाकली, हिज़ाज़, रूपमंजरी, बसंतमुखारी, अरज, राजेश्वरी, श्याम केदार, फरगना आदि को अपनी मौलिक संगीत संरचनाओं एवं जादुई उँगलियों का स्पर्श देकर प्रचार एवं प्रसार किया है, तो वहीं दूसरी ओर फुलवन, श्रावती, खुसरोवाणी, मध्यमी, चक्रधुन और कल्पना जैसे मधुर और मोहक रागों का सृजन करके भारतीय संगीत को समृद्ध किया है। उनसे यह पूछने पर कि सैंकड़ों राग अस्तित्व में हैं फिर जोड़ तोड़ करके नए रागों का सृजन करना कहाँ तक उचित है तो इसका उत्तर देते हुए वह कहते हैं, ''जोड़ तोड़ करके नए राग बनाने के पीछे मुख्य कारण यह है कि शुद्ध आरोह अवरोह के राग तो अब बन नहीं सकते। इसलिए छायालग या संकीर्ण राग ही बनाना एक प्रकार की मजबूरी है। दूसरी ओर, मैं क्या कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि पहले के सारे राग हमें सिद्ध हो गए हैं। यहाँ तो एक-एक सुर को साधने में ज़िन्दगी बीत जाती है लेकिन मस्तिष्क की उर्वरता भी कोई चीज़ है। कला से कलात्मकता का, संगीत से सृजन का अटूट और पुराना रिश्ता है। हर युग और सदी में यह कहा गया कि बस अब नहीं बनने चाहिए लेकिन फिर भी राग बने हैं। मन में अचानक कोई भावना, कोई कल्पना अंगड़ाई लेती है और अगले ही क्षण एक नए राग के रूप में वह सामने खड़ी हो जाती है। हम या आप चाहकर भी उसे नहीं रोक सकते हैं।''[14] इसका उदाहरण देते हुए ख़ाँ साहब कहते हैं, ''मैं श्रावती नदी के जोग फॉल्स को देख रहा था, जब मुझे एक नए राग के सृजन की प्रेरणा मिली। अत: हेमावती में शुद्ध मध्यम का प्रयोग कर मैंने उसे एक नया रूप दिया। बाद में उसका एल. पी. रिकार्ड निकला। रिकार्ड पर देने के लिए जब नाम की आवश्यकता पड़ी तो श्रावती के तट पर मिली प्रेरणा के कारण इसका नामकरण मैंने श्रावती किया। तो इस तरह त्वरित रूप में बनते हैं नए राग। ऐसा नहीं है कि नए राग बनाने के लिए हम कोई बड़ा परिश्रम करते हैं... महीनों सोच विचार करते हैं। राग तो एक क्षण बनते हैं। बाद में उसमें जोड़-तोड़ और सुधार की प्रक्रिया चलती रहती है।''[15]

इसके साथ ही दक्षिण भारतीय संगीत के अनेक रागों यथा-लतांगी, चलनटी, किरवानी, बसंतमुखारी, हेमावती, षण्मुखप्रिय, कनकांगी आदि की उत्तर भारतीय वाद्ययंत्रों पर प्रथम प्रस्तुति का श्रेय भी इन्हें ही प्राप्त है।[16] उनसे पूछने पर कि हिन्दुस्तानी और कनार्टक संगीत में क्या अन्तर है तो उन्होंने कहा, ''आधारभूत तौर पर कनार्टक और हिन्दुस्तानी संगीत के राग एक ही है केवल इम्परोवाइजेशन्स और इम्टरपिटेशन्स अलग-अलग है। वे 'गमक' और 'अन्दोलन' के कायल हैं, जबकि हिन्दुस्तानी संगीत में हम लोग इन का प्रयोग कभी कभार, जहाँ ठीक समझते हैं करते हैं। शुरू में दोनों संगीत एक ही था। शारंगदेव के समय से थोड़ा फर्क आया।

दक्षिण भारत के लोग हिन्दुस्तानी संगीत के रागों को तो जानते ही थे, मैंने उत्तर भारत की वादन शैली को उनके बीच लोकप्रिय बनाया। उन्हें सुनने की इच्छा पहले से ही थी, मैंने सुनने के साथ ही मज़ा और दिलचस्पी लेना उन्हें सिखाया था। वहाँ के बहतर ठाट में से कनकांगी, लतांगी, हेमावती, चलनटी, किरवानी, षण्मुखप्रिय आदि रागों को मैंने उत्तर भारत में लोगों से सराहवाया और अन्य लोगों ने भी बजाना शुरू

कर दिया। दक्षिण भारत के मशहूर वीणा-वादक एस. बालचन्द्र सितार अंग इस्तेमाल करते हैं।''[17]

रागों के समय-सिद्धान्त के बारे में भी उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ के अपने विचार हैं, ''जिस समय जो राग सुनने वाले के हृदय और मस्तिष्क में बैठ जाये, उसके दिल-दिमाग को छू ले, वही उस राग का समय है। कभी-कभी बेवक्त के राग भी ऐसे जमते हैं कि वक्त के नहीं जमते। म्यूज़िक तो यूनिवर्सल है। हर समय दुनिया में कहीं-न-कहीं तो रात होगी ही और कहीं-न-कहीं दिन भी होगा इसलिए समय-सिद्धान्त में मेरा केाई विश्वास नहीं।''[18]

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ ने कलाकार के रूप में अपने जीवन का सबसे पहला सार्वजनिक कार्यक्रम मात्र 13 वर्ष की छोटी-सी उम्र में दिया था। जिसके बारे में ख़ाँ साहिब कहते हैं', ''सन् 1941-42 में वालिद का इन्तकाल हो गया। मैं एक साल पहले बम्बई के ताराबाई हाल में सितार का एक प्रोग्राम दे चुका था जो उस उम्र के लिहाज से ठीक ही था। बाद में किसी भी कार्यक्रम मे छोटा-मोटा प्रोग्राम दे दिया करता था। कहीं गा दिया, कहीं बजा दिया।''[19] इस के बाद आपको सितार वादन का पहला बड़ा मौका 'ऑल बंगाल म्यूज़िक कान्फ्रेंस' 1943 मे मिला। उसके आयोजक श्री मन्मथनाथ घोष थे। इसी में पहली बार बिरजू महाराज ने नृत्य का प्रदर्शन किया था। इसी साल पं. रविशंकर, बड़े गुलाम अली ख़ाँ, भीमसेन जोशी, श्रीमती हीराबाई बड़ोदेकर, अहमदजान थिरकवा, करामतुल्ला ख़ाँ आदि ने भाग लिया था। आप की दो बैठके थीं, एक करामतुल्ला ख़ाँ के साथ और दूसरी अहमदजान थिरकवा के साथ। आप ने रात को जैजैवन्ती और दोपहर में मधुमाध सारंग बजाया था। श्री गंगादास झँवर ने आप को स्वर्ण-पदक देने की घोषणा की। श्रोताओं ने आपका कार्यक्रम इतना सराहा कि आपको एक महीने कलकत्ता ही रुक जाना पड़ा। आप हर दूसरे दिन कहीं न कहीं कार्यक्रम देते रहे।[20]

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ वाराणसी संगीत परिषद् द्वारा आयोजित संगीत सम्मेलन में भी अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर चुके हैं। जिस में आप ने राग फरगना और भैरवी बजाया था और तबले पर आप का साथ उस्ताद अल्लारक्खा ख़ाँ ने दिया था। 9 अप्रैल, 1977 को नामधारी समुदाय द्वारा आयोजित 'श्री सत्तगुरू प्रताप सिँह संगीत सम्मेलन' में भी आप ने हाज़री दी। जिस का आयोजन 'इवानेग़ालिब' हॉल दिल्ली में किया गया। तबले पर आप की संगत उस्ताद फैयाज़ ख़ाँ ने की थी। इसी के साथ ख़ाँ साहिब अनेक अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों में अपनी कला का प्रदर्शन कर चुके हैं। जैसे कि सवाई गंधर्व, हरिवल्लभ, डोवर लेन कलकत्ता, स्वामी हरिदास, उस्ताद हाफिज़ अली ख़ाँ, उस्ताद अलाउद्दीन ख़ाँ आदि। इन संगीत सम्मेलनों के अतिरिक्त आप मैसूर के राम मन्दिर चामुंडी और गोपालस्वामी वेट्टा में भी हाज़री लगा चुके हैं। इसके बारे में ख़ाँ साहिब कहते हैं, '' मैं शायद पहला मुसलमान हूँगा, जिस ने इन मन्दिरो में बजाया। वैसे भी मन्दिरों में खूब बजा चुका हूँ।''[21]

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ जीवन के यादगार सांगीतिक लम्हों के बारे में बताते हुए कहते हैं, ''सर्किल के कार्यक्रमों में उपस्थिति जरूर कम होती है लेकिन जो लोग आते हैं वे गुणी होते हैं। एक बार मैं शोलापुर आर्टिस्ट सर्किल में बजा रहा था। श्रोताओं में प्रसिद्ध कलाकार अलमेलकर भी थे, जो मेरे पीछे बैठे हुए थे। मैं बजा रहा था कि जाने कब अलमेलकर पर कैफ़ियत तारी हो गई। उन्होंने अपने कपड़े फाड़ दिये। मुझे पता नहीं चला। उन्होंने अपनी चादर आदि फेंक दी और अचेतावस्था में रोने लगे। जब उन्होंने पीछे से अचानक वाह उस्ताद कहा तौ मैंने मुड़कर उन्हें देखा। तब तक वह अपनी कमीज और गंजी फाड़ चुके थे। इस समय तक मैं झाले में इतने कलाइमेक्स पर था कि अचानक मिज़राब अँगुली से निकल गया। मैं बन्द करने ही वाला था कि मुझे ध्यान आया कि अभी अचानक बन्द कर दिया तो वह बचेंगे नहीं। मिज़राब उठाने का भी समय नहीं था, अत: मैं उंगलिया से ही बजाते हुए धीरे-धीरे कम करता गया और तब लगभग दो-तीन घंटे बाद वह होश में आए। मेरी उंगलियों में भी काफी चोट आयी।

दूसरी घटना अहमद नगर की है। सर्किल का ही कार्यक्रम था जिसमें मैंने लगभग 7 घंटे तक बजाया। मन्त्रमुग्ध से बैठे श्रोताओं की आँखों से आँसू बह निकले थे उस कार्यक्रम में। इसी तरह पूणे में मास्टर कृष्णराव की जयन्ती में बजाकर भी बड़ा आनन्द आया। संगीत के अनेक शिखर पुरूषों साहित लकवाग्रसत बाल गन्धर्व भी वहाँ उपस्थित थे-विशेष रूप से मुझे सुनने आए थे। मैं मंच पर करीब डेढ़ बजे रात को आया। मेरे साथ तबले पर अहमदजान थिरकवा थे जिनकी तबियत ठीक नहीं थी। कार्यक्रम का पहला चरण समाप्त होने पर थिरकवा साहब ने कहा कि अब बस करो। मेरी तबियत ठीक नहीं है, मैं थक गया हूँ। दूसरी और श्रोताओं की ओर से और बजाने की ज़बरदस्त माँग हो रही थी। मैं अभी अनिर्णय की स्थिति में ही था कि थिरकवा साहब उठकर चले गए। अन्तत: लोगों की इच्छाओं का आदर करते हुए मैंने कहा कि मैं बिना तबले के सितार बजाऊँगा। आप बस ताल देते रहिए। आपको तबले का अभाव नहीं खलेगा। मंच के पीछे पर्दे पर फूल, मकान, पानी के झरने आदि चित्रित थे। इसी बीच बिट्ठलराव कोरेगाँवकर ने ललित बजाने का अनुरोध किया और मैंने दो घंटे तक सिर्फ आलाप, जोड़ और झाला बजाया। बिट्ठलभाई की जेब में जो कुछ भी था उन्होंने निकालकर मेरे सामने रख दिया। फिर मास्टर कृष्णराव फुलंबरीकर मंच पर आकर बोले के 'मैंने आज तक ऐसा सितार नहीं सुना। इनके पीछे पर्दे पर चित्रित पेड़, झरने, चिड़ियाँ सब असली लग रहे थे। अब मैं किसी का सितार नहीं सुनूँगा। इनका भी नहीं।' बाल गंधर्व को लेकर लोग जब मंच तक आए तो वह बोले, मला आशीर्वाद देया' (मुझे आशीर्वाद दीजिए)। मुझे बड़ा अजीब -सा लगा कि एक इतना बड़ा कलाकार डबडबाई आँखों से मुझसे आशीर्वाद माँग रहा है। मेरी आँखों में भी आँसू आ गए। मैंने उनके पाँवों का स्पर्श करते हुए कहा, आशीर्वाद की जरूरत तो मुझे है—आपके आर्शीर्वाद की।''[22]

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ ने जहाँ एक ओर देश में अपने कला

प्रदर्शन से गुणीजनों का आशीर्वाद प्राप्त किया और वाह-वाही लूटी वहीं दूसरी और विदेशों में भी भारतीय संगीत की कीर्ति का पताका फहराया।

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ सबसे पहले 1955 में भारत सरकार की ओर से भारतीय सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य की हैसियत से चीन यात्रा पर गए। इस प्रतिनिधिमंडल में आपके साथ पं. डी. वी. पलुस्कर, इन्द्राणी रहमान, राधिका मोहन मैत्रा, पं. रामनारायण, मुन्ने ख़ाँ, प्रेम वल्लभ जी, बैले टरूप वज़ीफदार आदि भी शामिल थे। आपने वहाँ अपना शास्त्रीय संगीत तो बजाया ही, उनके लोक गीत और राष्ट्रगान को भी बजाया जिसे लोगों ने काफी सराहा। फिर, दो-तीन साल बाद गणतन्त्र दिवस के मौके पर आप प्रतिनिधिमण्डल के नेता के रूप में काठमांडू गए और फिर 1964 में अफ़गानिस्तान। फिर बुलावे तो बहुत आए, लेकिन मसरूफियत की वजह से आप किसी डेलीगेशन में हिस्सा न ले सके।[23] इसके बाद आपने सन् 1971 में यूरोप व अफ्रीका के बहुत से देशों में आपने कार्यक्रम प्रस्तुत किये। ख़ाँ साहब पाकिस्तान में भी अपनी कला का लोहा मनवा चुके हैं।

उपरोक्त विदेशी यात्राओं के बावजूद भी आप विदेशों की बजाये भारत में ही बजाना अधिक पसन्द करते हैं आपका कहना है—''...वहाँ जाने के बाद, मेरे ख्याल से आदमी का रियाज़ कम हो जाता है। कला में कोई फर्क नहीं पड़ता है। हाँ इतना जरूर है कि विदेशी लोग नई चीज़ बड़े अनुशासन से सुनते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत के लिए अपने देश का ही वातावरण, संस्कृति और 'वाह' चाहिए। तालियाँ नही एक 'आह' काफी है यहाँ के लोग जितना समझते हैं, यहाँ जैसा वातावरण,वहाँ नहीं। जिस दाद की हमें तलाश रहती है, वह यहाँ ही मिल सकती है, बाहर नहीं। हाँ पैसा कमाने और तफरीह की नीयत से विदेश ठीक है। तब आदमी इन्हीं सब में उलझ जाता है और रियाज़ छूट जाता है। लोग नाम की गरज में विदेश जाते हैं। मैं तो कहूँगा कि विदेश से लौट कर भी अगर आप में दम नहीं है, यहाँ के लोग तारीफ नहीं करेंगे। कुछ को छोड़कर सब के साथ अैसा ही हुआ है। हिन्दुस्तान में रहकर हिन्दुस्तानी संगीत में नाम करना बहुत कठिन है, जब कि विदेश में बेहद आसान है, वहाँ कुछ भी बजाओ, आखिर में लोग तालियाँ बजाएँगे ही, क्योंकि वे 'आह' या 'वाह' करना नहीं जानते।''[24] इसी के साथ ख़ाँ साहब यह भी कहते हैं, ''संगीत सार्वदेशिक है, वह हर जगह बराबर असर डालता है। मुझे भारत और बाहर भी जहाँ मेरा दिल कहता है कि 'रेस्पांस' मिलना चाहिए था, वहाँ मिलता है तो खुशी होती है। कभी अच्छा प्रोग्राम न होने पर भी ताली तो मिलती है मगर दिल को रंज होता है। मज़ा आने के लिए अपने देश का वातावरण बहुत जरूरी है। मैं बाहर बजाते समय भी ध्यान भारत का ही करता हूँ। आँखें बन्द कर प्रेरणा भारत से ही लेता हूँ और उसी हिसाब से अच्छा बजाकर वहाँ के श्रोताओं को खुश करके आता हूँ।''[25]

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ ने स्वतंत्र सितार वादन के साथ-साथ अन्य तंत्री वाद्यों के साथ जुगलबंदी की परम्परा में भी अहम भूमिका निभाई है। ख़ाँ साहिब का दावा है कि शहनाई, वीणा, जाज़ और गिटार आदि के साथ जुगलबन्दी सबसे पहले उन्होंने ही शुरू की।[26] ख़ाँ साहिब ने यहाँ एक ओर उत्तर भारतीय संगीत के कलाकारों -पं. रामनारायण (सारंगी), पं. राधिका मोहन मैत्रा (सरोद), उस्ताद बिस्मिल्लाह ख़ाँ (शहनाई) आदि के साथ जुगलबन्दी की वहीं दूसरी ओर दक्षिण भारत के प्रसिद्ध वीणा वादक पं. यमनी शंकर शास्त्री के साथ भी जुगलबंदी की। इसी के साथ आप ने 1958 में अमेरिका के प्रसिद्ध जाज़ पिआनिस्ट डेव बरूबेक एवं 1963 में ब्रिटेन के गिटार वादक जूलियन ब्रीम के साथ जुगलबन्दी की।

इसके अतिरिक्त उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ 1940के दशक से ही आकाशवाणी के सर्वोच्च श्रेणी के कलाकारों की सूची में शामिल हैं। आपने आकाशवाणी पर सबसे पहला कार्यक्रम 1947 में दिया था। कार्यक्रम ऐसा अच्छा हुआ कि और केन्द्रों से भी माँग आई और आपको अलग-अलग केन्द्रों पर बजाने का मौका मिला। इससे आपकी लोकप्रियता बढ़ने लगी।[27] खाँ साहिब आकाशवाणी के बहुत से संगीत सम्मेलनों में भी अपनी प्रस्तुति दे चके हैं। इसी के साथ आप दूरदर्शन के भी उच्च श्रेणी के कलाकार हैं। दूरदर्शन द्वारा आपके बहुत से रिकार्ड बनाए गए है। जिन में से आप का राग जैजैवन्ती का रिकार्ड बहुत प्रसिद्ध है।

आप अपने श्रोताओं का बहुत ध्यान रखते है। मंच प्रदर्शन के समय आप श्रोताओं की पूर्ण संतुष्टि करते हैं और श्रोताओं को कभी नाराज़ करके मंच नहीं छोड़ते। प्रदर्शन के लिए आप इतने अनुशासन प्रिय हैं कि बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर भी आप पूर्व निर्धारित कार्यक्रम को रद नहीं करते। श्रोताओं के प्रति आपकी सौहार्द पूर्णता और अनुशासन प्रियता देखते ही बनती है।

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ कहते हैं, ''स्वर से आंतरिक प्रेम और लगाव रखना पूर्ण निष्ठा के साथ गुरू से तालीम ग्रहण करना, बुजुर्ग कलाकारों को सुनते रहना, सभी घरानों का आदर करना, नादब्रह्म की उपासना करना, प्रतिष्ठापित पुष्ट पारम्परिक आधार पर चिंतन-मनन कर नवसृजन करते रहना और सतत रियाज़ करना प्रत्येक कलाकार का कर्तव्य है।''[28]

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ ने अपनी अत्यधिक सांगीतिक व्यस्तताओं के बावजूद अपने सांगीतिक दायित्व से मुँह नहीं मोड़ा। शिष्यों को सितार की विधिवत् शिक्षा देने के लिए सन् 1976 में आपने 'हलीम अकादमी ऑफ़ सितार' नाम से एक रजिस्टर्ड ट्रस्ट की स्थापना की। यहाँ आप अपने शिष्यों को पारम्परिक गुरु-शिष्य पद्धति से ही संगीत शिक्षा देते हैं।

उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर ख़ाँ वर्तमान समय में प्रचलित संगीत की संस्थागत शिक्षण प्रणाली में विश्वास नहीं रखते। जब उनसे यह पूछा गया कि अगर आप इन संस्थागत शिक्षण प्रणाली में विश्वास नहीं रखते तो आप ने मुम्बई में 'हलीम अकादमी ऑफ़ सितार' की स्थापना क्यों की। इसके उत्तर में ख़ाँ साहब कहते हैं, ''मेरी संस्था की तुलना आप इन संस्थाओं से मत कीजिए। मेरे यहाँ श्रोता नहीं कलाकार तैयार होते हैं।

चर्चा करने वालों को नहीं बल्कि चर्चित होने वालों को पैदा करते हैं हम लोग। कानसेन नहीं तानसेन बनाए जाते हैं हमारे यहाँ।''[29] इसी के साथ आप दिल्ली में 'गंधार' नामक संस्था में संरक्षक के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं। गंधार में गज़ल, ठुमरी, भजन आदि सुगम शास्त्रीय संगीत विद्याएँ सिखाई जाती। उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ देश के अनेक विश्वविद्यालयों और शिक्षण- संस्थाओं में एक अतिथि प्राध्यापक के रूप में भी अपनी सेवाएँ अर्पित कर चुके हैं।

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ के शिष्यों में कुतबुद्दीन आसमाँ, पं. हरशंकर भट्टाचार्य, पं. राजेन्द्र बर्मन, कौसर हलीम ख़ाँ सुपुत्री, जुनैन हलीम ख़ाँ सुपुत्र, रविन्द्र चारी, गार्गी शिन्दे, दीपशंकर भट्टाचार्य, रोहन दासगुप्ता, विजय देसाई के नाम उल्लेखनीय हैं।

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ संगीत के क्षेत्र में एक योग्य आयोजक के रूप में भी अपनी सेवाएँ प्रदान कर चुके है। ख़ाँ साहिब द्वारा स्थापित 'हलीम अकादमी ऑफ सितार' में ख़ाँ साहिब बहुत से सांगीतिक कार्यक्रमों का आयोजन कर चुके हैं। जिन का विवरण निम्नलिखित अनुसार है—

वर्ष	कलाकार
1995	उस्ताद अमज़द अली ख़ाँ
1998	पंडित जसराज
2000	श्रीमती जरीन शर्मा
2002	उस्ताद राशिद ख़ाँ
2007	पं. भजन सेपोरी एवं अभय सोपोरी
2010	डॉ. एल. सुब्रामणियम
2011	डॉ. अश्विनी भिड़े

वर्तमान समय में आप के सुपुत्र जुनैन हलीम ख़ाँ 'हलीम अकादमी ऑफ सितार' के निर्देशक के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं।

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ एक ओर शास्त्रीय संगीत के दिग्गज कलाकार है, तो दूसरी ओर चित्रपट संगीत से भी वह काफी गहराई से जुड़े रहे हैं। ख़ाँ साहिब अपने समय के कालाजयी चित्रपट-झनक-झनक पायल बाजे, यादें, महात्मा विदुर, कोहिनूर, गूँज उठी शहनाई, मुगल-ऐ-आज़म, सम्पूर्ण रामायण, अन्नपूर्णा, दो आँखें बाहर हाथ, अनारकली, बारादरी, शबाब आदि में वसंत देसाई, सी. रामचन्द्र, मदन मोहन, नौशाद आदि नामचीन संगीत निर्देशकों के साथ काम कर चुके हैं। जहाँ 'गूँज उठी शहनाई' में उस्ताद बिस्मिल्लाह ख़ाँ के साथ उनकी जुगलबंदी खूब सराही गयी वहीं कोहिनूर में ठोक झाले का अलग ही आकर्षण था।

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ चित्रपट संगीत को मंचीय शास्त्रीय संगीत से कहीं अधिक कठिन मानते हैं। आप कहते हैं, ''जो लोग, इसके महत्त्व को कम आंकते हैं, वे नादानी करते हैं। मंच पर हम लोग जो माहौल घण्टे भर में बनाते हैं फिल्मों में दो से साढ़े तीन मिनट के अन्दर बना लेना होता है। फिल्म वालों के नोट्स और लय पक्ष काफी अच्छे होते हैं। मंच पर कलाकार अपने मूड के हिसाब से लय घटाने-बढ़ाने के लिए स्वतंत्र होता है, लेकिन फिल्म संगीत में यह सब नहीं होता। वहाँ यांत्रिक उपकरणों के माध्यम से सब कुछ सुनिश्चित, सुस्थित होता है, ... उस्ताद बरकत अली ख़ाँ, झण्डे ख़ाँ, अमीर खाँ, बड़े गुलाम अली ख़ाँ, डी. वी पलुस्कर, डी. पी. घोड़गाँकर और कुछ हद तक मैंने भी फिल्म संगीत को सुदृढ़ आधार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।''[30]

इसके अतिरिक्त ख़ाँ साहिब ने 'राग' नामक वृतचित्र में भी अपना सितार वादन प्रस्तुत किया है। इस में आप ने राग भैरवी बजाया है और तबले पर आपकी संगत पं. सदाशिव पवार ने की है। इस वृतचित्र का निर्देशन श्री दिबेन भट्टाचार्य द्वारा 1960 के दशक में किया गया था और विश्व प्रसिद्ध बेला वादक श्री येहूदी मैनहिन ने इस में सूत्रधार की भूमिका निभाई थी। इसी के साथ श्री नागनाथ मनकेश्वर द्वारा सन् 2008 में ख़ाँ साहिब के जीवन पर आधारित 'उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ' के नाम से एक वृतचित्र का भी निर्माण किया जा चुका है। जिसमें आपके द्वारा मध्यमी, ज़िला काफी, तिलक कामोद एवं बिलावल आदि रागों का वादन किया गया है।

उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ ने संगीत के क्रियात्मक पक्ष के साथ-साथ शास्त्र पक्ष की ओर भी विशेष ध्यान दिया है। शास्त्र पक्ष के प्रति अपनी रूचि दिखाते हुए आपने अंग्रेजी और उर्दू मे संगीत के विषय पर अनेक निबन्ध लिखे। आपके इन निबन्धों को 'नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया' द्वारा 'खुसरोशनासी' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया गया। ख़ाँ साहिब ने सन् 2000 में स्वयं की वादन शैली के ऊपर 'ज़ाफरख़ानी बाज-इनोवेशन इन सितार म्यूज़िक' के नाम से एक पुस्तक भी प्रकाशित की है। इस पुस्तक की प्रस्तावना श्रीमती अन्नपूर्णा देवी द्वारा लिखी गई है। ख़ाँ साहिब इस पुस्तक के विषय के बारे में बताते हुए कहते हैं, ''इस पुस्तक में मैंने सितार के अविष्कार, इतिहास, ज़ाफरख़ानी वादन शैली की तकनीकी विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कई रचनाएँ भी संगीत लिपि सहित दी हैं। साथ ही एक विजुअल सी.डी. भी है ताकि विभिन्न वर्णों के वादन के समय हाथ और अँगुली की स्थिति को अगर चित्रों के माध्यम से कोई समझना चाहे तो इस विजुअल सी.डी. के माध्यम से समझ ले। मैं यह दावा तो नहीं करता कि इस पुस्तक में सब कुछ है, क्योंकि हर इन्सान की एक सीमा होती है। लेकिन फिर भी इस पुस्तक को अपनी सामर्थ्य के अनुसार उपयोगी बनाने का मैंने हर सम्भव प्रयास किया है और मुझे आशा है कि मेरे प्रशंसक, मेरे श्रोता और आपके पाठकगण इसे निश्चित रूप से पसन्द करेंगे।''[31]

इस पुस्तक के विषय में कुछ विद्वानों ने अपने विचारों को इस प्रकार प्रकट किया। टेड राकवेल ने इस पुस्तक को सम्पूर्ण एवं सहज बोधगम्य कहा है। श्री एस के सक्सेना ने 'श्रुति' पत्रिका में लिखा है कि इस पुस्तक में सितार वादन की तकनीक बहुत ही विशद और ठीक ढंग से समझाई गई है। 'इंडिया टुडे' में इस पुस्तक को उद्भुत एवं असाधरण

बताया है। 'द हिन्दू' ने इस पुस्तक की सराहना करते हुए कहा है कि इस नवीन शैली का यत्न से संरक्षण और प्रसार ज़रूरी है। 'द टाइमस ऑफ इंडिया' एंव 'महाराष्ट्र टाइम्स' ने इस पद्धति की सोदाहरण व्याख्या की प्रशंसा की है।[32]

अंत सदी के इस महान नायक का 4 जनवरी, 2017 को पूर्ण हृदय गति रुकने से 89 वर्ष की आयु में निधन हो गया। संगीत जगत् के लिए दिए गए योगदान की दृष्टि से खाँ साहिब की तुलना नहीं की जा सकती। वस्तुत: वह सितार वादन में एक नव वैचित्र्य ले आए थे और उन्होंने अपने क्षेत्र में एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था। सितार वादन में उन्होंने जिस विशेष शैली 'ज़ाफरख़ानी बाज' का सूत्रपात किया वह अनुकरणीय है। यद्यपि आज ख़ाँ साहिब का पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं है परन्तु अपनी कला के माध्यम से वे सदा हमारे बीच रहेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. खाँ, अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ 2000, ज़ाफरख़ानी बाज-इनोवेशन इन सितार म्यूज़िक, हलीम ज़ाफर ख़ाँ द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 14
2. वही।
3. मिश्र, शम्भूनाथ 1991 सात सुर सताईस दायरे, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 171.
4. वही।
5. वही, पृष्ठ 175.
6. वही।
7. व्यास, मदनलाल मार्च 2003, परम्परावादी और नवसर्जक-उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ, संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस उ. प्र., पृष्ठ 33, 34.
8. टाक, माया, दिसंबर 1998, उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ लेख, संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस उ. प्र., पृष्ठ 51, 52.
9. मिश्र, शम्भुनाथ 1991, सात सुर सताईस दायरे, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 171.
10. वही।
11. वृतचित्र-उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ, 2008, निर्देशक-नागनाथ मनकेश्वर।
12. मिश्र, शम्भुनाथ, 1991, सात सुर सताईस दायरे, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 178.
13. शर्मा, योगिता 2008, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तंत्री वाद्यों में परिवर्तन एवं प्रवृतियाँ, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 183.
14. मिश्र, विजयशंकर, 2004, अंतर्नाद: सुर और साज़, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 6, 7.
15. वही, पृष्ठ 7.
16. मिश्र, विजयशंकर नवंबर, 2001, सितार का अनूठा अंदाज-ज़ाफरख़ानी बाज लेख, संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ. प्र., पृष्ठ 48.
17. मिश्र, शम्भुनाथ 1991 सात सुर सताईस दायरे, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 177, 178.
18. टाक, माया दिसंबर 1998, उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ लेख, संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस उ. प्र., पृष्ठ 53
19. मिश्र, शम्भुनाथ 1991, सात सुर सताईस दायरे, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 170
20. वही, पृष्ठ 172.
21. वही, पृष्ठ 175.
22. मिश्र, विजयशंकर 2004, अंतर्नाद: सुर और साज़, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 10, 11
23. मिश्र, शम्भुनाथ, 1991 सात सुर सताईस दायरे, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 177
24. वही।
25. वही, पृष्ठ 180.
26. टाक, माया, दिसंबर 1998, उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ, संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ. प्र., पृष्ठ 53.
27. मिश्र, शम्भुनाथ, 1991, सात सुर सताईस दायरे, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 171.
28. व्यास, मदनलाल, मार्च 2003, परम्परावादी और नवसर्जक-उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ, संगीत कार्यालय हाथरस, उ. प्र., पृष्ठ 32.
29. मिश्र, विजयशंकर, 2004, अंतर्नाद: सुर और साज़, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 7.
30. मिश्र, विजयशंकर नवंबर 2001, सितार का अनूठा अंदाज-ज़ाफरख़ानी बाज, संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ. प्र., पृष्ठ 48.
31. मिश्र, विजयशंकर 2004, अंतर्नाद: सुर और साज़, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ सं. 11.
32. व्यास, मदनलाल, मार्च 2003, परम्परावादी और नवसर्जक-उस्ताद अब्दुल हलीम ज़ाफर ख़ाँ, संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस, उ. प्र., पृष्ठ 33.